केवल गोस्वामी

पिता

पिता!
तुम पिता की तरह
क्यों नहीं लगते—भरे-पूरे
छतनार पेड़ की तरह
जिसकी गाढ़ी छाया
हर लेती है हर संताप?

पिता!
तुम पिता की तरह
क्यों नहीं लगते—
जिसके चारों ओर
चलता है
घर-संसार का
प्रत्येक क्रियाकलाप?

पिता!
तुम पिता की तरह
क्यों नहीं लगते—
जिसकी उपस्थिति में
इच्छाएँ हिलोरें लेती हैं
ज्वार-भाटा की तरह
छू आती हैं
सुदूर क्षितिज का आखिरी कोना?

पिता!
तुम पिता की तरह
क्यों नहीं लगते—
कि साँझ को
जिसके जूतों के साथ लौटी मिट्टी
भर देती है घर की तमाम रिक्तताएँ
गृहिणी की माँग के सिंदूर की तरह?

पिता!
तुम पिता की तरह
क्यों नहीं लगते—

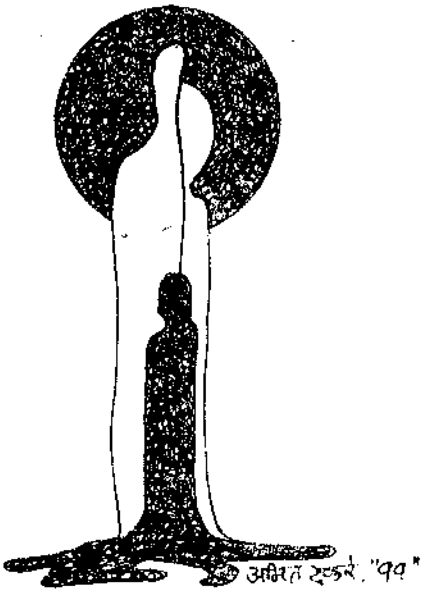

समस्याओं से जूझते
योद्धा की तरह
जीवन से भरपूर नियंता की तरह?

पिता!
तुम पिता की तरह
क्यों नहीं लगते—
जिसके हाथों में सुरक्षित है
हमारा भविष्य
जैसे सुरक्षित होती है
खुशबू
हिरण की नाभि में?

पिता!
तुम पिता की तरह
क्यों नहीं जान लेते—
हमारी आँखों में उफनते
ढेर सारे प्रश्न
हमारी जिज्ञासाएँ, उमंगें
बलखाती नदी की तरह
किनारे तोड़ने को आतुर?

पिता!
तुम पिता की तरह
क्यों नहीं लगते—
जिसके हृदय पर अंकित था
हमारी उम्र का हर लमहा
हमारी नादानियों-शैतानियों का
लेखा-जोखा?

पिता!
तुम पिता की तरह
क्यों नहीं लगते—
जो दिग्भ्रांत बच्चों को
उँगली थामकर
दिखाता है रास्ता
वहीं कहीं आस-पास
होती है उनकी मंजिल?

पिता!
तुम्हें याद है पिता
कि आखिरी बार
हमने कब
एक साथ भोजन किया था
कब हँसे थे हम एक साथ
कि परिंदों ने फड़फड़ाकर
उतारी थी हमारी नकल
और हवा सुनाती रही थी
उसकी अनुगूँज देर तक?

पिता!
यह कैसे, क्योंकर हुआ
कि खूँटी पर टँगा तुमसे भी पुराना
तुम्हारा कोट,
टिड्डियों के अंडों से भरा
तुम्हारा फटा छाता,
एक अंधा चश्मा
और घर का सर्वथा उपेक्षित कोना
तुम्हारा पर्याय हो गया।

वे दोनों

वे दोनों
शताब्दियों से एक ही छत के नीचे
एक-दूसरे का
मातम मना रहे हैं
और प्रतीक्षा कर रहे हैं कि
कौन पाएगा पहले मुक्ति!
कि पहले
कौन होगा शामिल
उस नौटंकी में
जिसे सामाजिक संदर्भों में
सियापा कहते हैं
सचमुच
वह दिन किसके नसीब में है
वे नहीं जानते।

वह अपनी पगार लाती है
और साथ ही
जीने के लिए
दाना-पानी!
हिफाजत से रख देती है
कई तालों से जड़ी
अलमारी के भीतर
ताली हमेशा
उसकी पुष्ट छातियों के मध्य
झूलती रहती है
मंगलसूत्र की तरह।

वह भी
पगार लाता है
साथ ही अपना अन्न-जल
बिना ताले के भी
जिसपर पड़ती नहीं
किसी की निगाह।
रात को उठ-उठकर
सूँघता है
जली हुई रोटियों की गंध
जो नहीं उतर पाई थीं
गले के नीचे
बीती साँझ को।

मरे हुए विश्वास की गंध
रात भर फैली रहती है
लक्ष्मणरेखा के आस-पास।

किंतु जब कभी
वे दोनों निकलते हैं एक साथ
किसी की
गमी या खुशी में शामिल होने के लिए
तो दुनिया की निगाहों में
वे आदर्श पति-पत्नी होते हैं
भ्रमित लोग
लाँघ जाते हैं सारी सीमाएँ
उनकी प्रशंसा करने में।

वे दोनों
रिहर्सल कर रहे हैं
शताब्दियों से—
मरणोपरांत
दूसरे का कर्मकांड करने का
यश किसे मिलेगा
ताकि
अगर कुछ दिन शेष हो तो
न रहे किसी प्रेतात्मा का अंदेशा,
यह सत्कर्म
कौन करेगा
वे नहीं जानते
किंतु मन-ही-मन विश्वास है
दोनों को
इसे पा लेने का। □

जे-३६३, सरिता विहार,
मथुरा रोड, नई दिल्ली-११००४४

कविता

रेणु राजवंशी गुप्ता

एक बूँद बनकर

जो चाहते हैं सागर उठाना
सागर की लहरें गिनना
सागर को आकाश से मिलाना
वो करें आकाश-पाताल एक,
अपना अस्तित्व सँवारती
मैं तो खुश हूँ एक बूँद बनकर।

बूँद में क्षमता है सागर का निर्माण करे
एक सागर का दूसरे सागर से मिलान करे
क्या कभी सागर को बूँद रचते देखा है
उसकी पीड़ा बाँटने के लिए बूँद बनते देखा है?
बूँद-बूँद ही से तो सागर बनते हैं
क्या कभी सागर गागर में सिमटते हैं?
सृष्टि के निर्माण की सहभागी
मैं तो खुश हूँ एक बूँद बनकर।

बूँद को अपने अस्तित्व का भान है
जीवन है भंगुर इसकी पहचान है,
रचने की क्षमता है, वो कर्मरत दिन-रात है
सागर को है अपने आकार पर अभिमान
नहीं घटा है युगों-युगों से बन गया है जड़-आलस्य-प्रमाद
पीड़ा नहीं झेली रचने की इसने, फिर किस कर्म पर है इसे अभिमान
जीने के लिए क्षण-क्षण चेतती
मैं तो खुश हूँ एक बूँद बनकर।

समय की झोली में अर्पण कर आगे बढ़ जाऊँगी अनंत पथ पार
समा जाएगा मुझमें यह सागर अनंत अपार
धरा के कोने-कोने पर होगा मेरा विस्तार
परंतु क्या नाम था मेरा, यह भी ना जान पाएगा संसार
अंत को अनंत से मिलाती
मैं तो खुश हूँ एक बूँद बनकर। □

6070 EAGLET DR.,
WEST CHESTER, OH 45069,
USA
513-860-1151